International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 8.141
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 12 No. 5 May – June 2025

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

आदित्य राज

शोधार्थी, (NET), राजनीति विज्ञान विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविधालय दरभंगा

Corresponding Author - आदित्य राज

DOI - 10.5281/zenodo.16397926

सारांश :

सामाजिक न्याय भारतीय संविधान की आत्मा और उसकी दृष्टि का केंद्रबिंदु है। एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित और व्यवस्थित बनाए रखने के लिए यह राज्य का कर्तव्य है कि वह देश की विधिक संरचना में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करे। साथ ही, यह राज्य की ज़िम्मेदारी है कि समाज का कोई भी नागरिक सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक न्याय से वंचित न रहे। भारतीय संविधान ने एक ऐसे समाज के निर्माण की नींव रखी है, जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक न्याय को विशेष महत्व दिया गया है। भारत, अपनी आरक्षण नीति के माध्यम से, सामाजिक न्याय की अवधारणा को व्यवहार में लाने का प्रयास कर रहा है। वास्तविकता यह है कि भारत में प्राचीन काल से चली आ रही जाति-आधारित हिंदू सामाजिक व्यवस्था ने असमानता को जन्म दिया। इस व्यवस्था ने अस्पृश्यता और भेदभाव जैसी अमानवीय प्रथाओं को जन्म दिया, जिससे दलित समुदाय जैसे अनेक वर्ग प्राकृतिक संसाधनों और आजीविका के अधिकारों से वंचित रह गए। इस सामाजिक विषमता को समाप्त करने और एक न्यायसंगत समाज की स्थापना के लिए डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रमुखता से उठाया। उन्होंने संविधान निर्माण के दौरान समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार दिलाने हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किए। यह शोध-पत्र विशेष रूप से डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय में योगदान और विचारों का विश्लेषण करेगा, साथ ही आधुनिक भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की प्रासंगिकता का परीक्षण भी प्रस्तुत करेगा।

मुख्य शब्द : भारतीय संविधान, सामाजिक न्याय, समानता, बंधुत्व, स्वतंत्रता, भारतीय समाज

प्रस्तावना :

सामाजिक न्याय एक ऐसा विचार है जो समय के साथ निरंतर विकसित होता रहा है। यह न केवल समाज के ढांचे को प्रभावित करता है, बल्कि व्यक्ति के जीवन को भी गहराई से छूता रहा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इस विचार का सबसे प्रभावशाली रूप डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिंतन में दिखाई देता है। एक अछूत समझी जाने वाली जाति में जन्म लेने के कारण उन्होंने समाज की विषमताओं को न केवल झेला, बल्कि समझा और महसूस भी किया। उनके विचारों और संघर्षों ने सामाजिक न्याय की धारणा को नवीन रूप और दिशा दी। उनका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक असमानता, जातिवाद और रूढ़िवादिता के विरुद्ध समर्पित था। वे मानते थे कि जब तक समाज में सबको समान अवसर, अधिकार और गरिमा नहीं मिलेगी, तब तक सच्चे लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं हो सकती।

लोकतंत्र केवल एक शासन प्रणाली ही नहीं है बल्कि यह एक जीवन-दर्शन भी है जो स्वतंत्रता, समानता, न्याय और बंधुत्व जैसे मूल्यों पर आधारित होता है। जब इन मूल्यों का सम्यक् रूप से पालन किया जाता है, तब समाज में समरसता और समानता संभव होती है। परंतु आज भी भारतीय समाज में सामाजिक विषमता की गहरी जड़ें व्यापक रूप में मौजूद हैं। जाति, धर्म, लिंग, आर्थिक स्थिति और जन्म स्थान जैसे आधारों पर भेदभाव समाज को कमजोर करता है। यह भेदभाव लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों को चुनौती देता है और सामाजिक न्याय की स्थापना में बाधा उत्पन्न करता है। यद्यपि संविधान ने प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्रदान किए हैं, लेकिन वास्तविकता में ये अधिकार अब भी समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच पाए हैं। दलित, आदिवासी, महिलाएं और आर्थिक रूप से पिछड़े समुदाय आज भी अनेक प्रकार के सामाजिक और आर्थिक शोषण का सामना कर रहे हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार और न्याय तक उनकी पहुँच सीमित है। यह स्थिति लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए एक गम्भीर खतरा है।

सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए केवल संवैधानिक प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सामाजिक चेतना और नैतिक बदलाव भी आवश्यक है। जब तक समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी गरिमा के अनुसार जीवन जीने का अवसर नहीं मिलेगा, तब तक लोकतंत्र केवल एक दिखावा मात्र रह जाएगा। डॉ. अम्बेडकर का यह कथन आज भी प्रासंगिक है कि **"राजनीतिक समानता तभी सार्थक है जब वह सामाजिक और आर्थिक समानता के साथ जुड़ी हो।"** उनके विचारों से प्रेरणा लेकर आज भी हमें सामाजिक न्याय की दिशा में ठोस और सार्थक प्रयास करने होंगे। आज के समय में आवश्यक है कि हम अपने लोकतांत्रिक मूल्यों की पुनः समीक्षा करें और यह सुनिश्चित करें कि समाज का प्रत्येक वर्ग विकास की मुख्यधारा में सम्मिलित हो। शिक्षा का प्रसार, महिलाओं की भागीदारी, आर्थिक अवसरों की समानता, तथा पिछड़े वर्गों का सशक्तिकरण, ये सभी उपाय सामाजिक विषमता को मिटाने में सहायक हो सकते हैं। साथ ही, समाज में संवेदनशीलता और सह-अस्तित्व की भावना को प्रोत्साहित करना भी अत्यंत आवश्यक है।

लोकतंत्र की सफलता केवल चुनावों या प्रतिनिधियों के चयन से नहीं मापी जा सकती। उसकी असली सफलता तभी संभव है जब समाज में हर व्यक्ति को सम्मान, समानता और न्याय मिले। सामाजिक न्याय की स्थापना ही लोकतंत्र की आत्मा है, और जब तक सामाजिक विषमता रहेगी, तब तक लोकतंत्र अधूरा ही रहेगा। भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना में कई महान चिंतकों और सुधारकों का अमूल्य योगदान रहा है। इन चिंतकों में राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, और डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विशेषकर डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन में सामाजिक भेदभाव और अपमान को नजदीक से झेला था, क्योंकि वे एक अछूत माने जाने वाले समुदाय में जन्मे थे। इसी पीड़ा ने उन्हें सामाजिक न्याय के संघर्ष के लिए दृढ़ संकल्पित किया। उन्होंने साफ शब्दों में कहा था कि यदि वे दलित समाज को मुक्ति नहीं दिला सके, तो वे अपने जीवन को समाप्त कर देंगे। यह कथन उनकी सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिबद्धता और संघर्ष के प्रति उनके पूर्ण समर्पण को दर्शाता है।

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि शिक्षा ही सामाजिक परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम है। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना की, ताकि वंचित वर्गों को ज्ञान की शक्ति मिल सके। उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना 1924 में की, फिर 1928 में डिप्रेस्ड क्लास एजुकेशन सोसाइटी और 1946 में पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की। उनका विश्वास था कि ज्ञान के बिना कोई भी समाज न्यायपूर्ण ढंग से आगे नहीं बढ़ सकता। उन्होंने शिक्षा को शेरनी का दूध बताया और कहा कि जो इसे ग्रहण करेगा, वह समाज में दहाड़ेगा। इसके अतिरिक्त, डॉ. अम्बेडकर ने यह भी स्पष्ट किया कि जब तक दलित समुदाय राजनीति में अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं करता और राजनीतिक शक्ति प्राप्त नहीं करता, तब तक उन्हें न्याय नहीं मिल सकता। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने ऑल इंडिया शेड्यूल कास्ट फेडरेशन और इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी जैसी संस्थाओं की स्थापना की, जिससे वंचित वर्गों की राजनीतिक भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। उनके अनुयायियों ने आगे चलकर रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना की, जिससे यह संघर्ष और अधिक संगठित रूप में आगे बढ़ा।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने जब भी साइमन कमीशन, मुंबई लेजिस्लेटिव काउंसिल, गोलमेज सम्मेलन या संविधान सभा जैसी महत्वपूर्ण बैठकों में अपनी बात रखने का अवसर पाया, उन्होंने दलितों के पक्ष में अत्यंत सशक्त और तार्किक ढंग से अपनी बात रखी। दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व की मांग पर जब महात्मा गांधी ने अनशन किया और पूरे देश में इस पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई, तब डॉ अंबेडकर ने दूरदर्शिता और समझदारी का परिचय देते हुए गांधी जी और कांग्रेस के साथ पूना समझौता (1932) किया। इस समझौते के परिणामस्वरूप दलितों को विधान मंडलों में आरक्षण के साथ-साथ कई अन्य सुविधाएं प्राप्त हुईं, जिससे उनके सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण की राह प्रशस्त हुई।

डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के उद्धार के लिए कई योजनाओं को लागू करवाया और संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में समाज के हाशिये पर मौजूद उपेक्षित वर्गों के लिए संविधान में अनेक कल्याणकारी प्रावधान किए। स्वतंत्र भारत के पहले कानून मंत्री के रूप में उन्होंने 'हिंदू कोड बिल' का निर्माण किया, जो विशेष रूप से हिंदू महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करने और उन्हें समान अधिकार दिलाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम था। उन्होंने हिंदू समाज की संरचना में आवश्यक सुधार लाकर नारी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। उनका मानना था कि अन्याय तब तक नहीं मिटता जब तक पीड़ित स्वयं उसके विरुद्ध खड़ा न हो जाए। उन्होंने 'शिक्षित बनो', 'संगठित बनो' और 'संघर्ष करो' जैसे प्रेरणादायी नारों के माध्यम से दलितों और समाज के उपेक्षित वर्गों को जागरूक किया और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

डॉ. अम्बेडकर के निधन पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें हिंदू समाज में व्याप्त अत्याचारों के विरुद्ध एक सशक्त विद्रोह के प्रतीक के रूप में याद किया। उनकी स्मृति में भारत सरकार ने उन्हें 14 अप्रैल 1990 को देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया। इसके साथ ही, 1990-91 में उनकी जन्म शताब्दी को 'सामाजिक न्याय वर्ष' के रूप में मनाया गया, जो उनके समर्पण और योगदान को राष्ट्र की ओर से एक श्रद्धांजलि थी।

डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के परिपेक्ष्य में विचार :

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भारत में सामाजिक न्याय को मजबूत बनाने की दिशा में अहम भूमिका निभाई। उन्होंने अछूतों के लिए 'दलित' शब्द को पहचान दी, जो समाज के अलग-अलग हिस्सों में हमेशा वंचित और शोषित रहे। जातिगत भेदभाव ने इन लोगों को गरीबी, अपमान और अन्याय झेलने पर मजबूर कर दिया था। ज्योतिबा फुले और डॉ. अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों ने दलितों की दुखद स्थिति को समझा और उनके अधिकारों के लिए आवाज उठाई। डॉ. अम्बेडकर भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार थे। उन्होंने ऐसा संविधान तैयार किया जिसमें हर नागरिक को बराबरी, आज़ादी और सम्मान से जीने का हक मिला। संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए विशेष अधिकार और प्रावधान किए गए ताकि वे भी समाज में मुख्यधारा में शामिल हो सकें। वे ऐसे लोग हैं जो ज़मीन पर खेती करने, जूते बनाने, कपड़े धोने, शौचालय साफ़ करने, मैला ढोने, चमड़ा निकालने, जानवरों के शव उठाने और साफ़-सफाई जैसे कठिन काम करते हैं। इन्हें समाज में अस्पृश्य समझा जाता था, जिसके कारण ऊँची जातियों के लोग उनके साथ बैठने या मेलजोल रखने से भी बचते थे। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान में ऐसे प्रावधान बनाए, जिनसे इनके साथ होने वाले भेदभाव को रोका जा सके और उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर मिल सके।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारतीय समाज के महान सामाजिक क्रांतिकारी थे। उन्होंने जीवनभर दलितों के अधिकारों की लड़ाई लड़ी और उन्हें उस तिरस्कार और दमन से बाहर निकाला, जिसमें सदियों से उन्हें धर्म और परंपराओं के नाम पर जकड़ दिया गया था। उनका स्पष्ट मत था कि अधिकार कभी दान में नहीं दिए जाते, हर किसी को अपने हक के लिए संघर्ष करना पड़ता है। अम्बेडकर ने हिन्दू समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था की तीखी आलोचना की। अपनी प्रसिद्ध कृति 'शूद्र कौन थे?' में उन्होंने यह प्रमाणित किया कि मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था ने समाज में असमानता और शोषण को जन्म दिया। उन्होंने बताया कि ब्राह्मणों को मुख, क्षत्रियों को भुजाएँ, वैश्य को जंघा और शूद्रों को पाँव से जोड़ कर जो तुलना की गई, वह असमानता की भावना को मजबूती प्रदान करती है। इस व्यवस्था में ब्राह्मण उच्चतम स्थान पर हैं और शूद्र तथा अस्पृश्य वर्ग को शोषित और अपमानित जीवन जीना पड़ता है। उनका मानना था कि जब तक यह वर्ण व्यवस्था कायम है, तब तक अस्पृश्यता का अंत संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने हिन्दू धर्म में समानता की कोई गुंजाइश न देखते हुए अंततः बौद्ध धर्म को अपनाने का फैसला किया, जो तर्क, नैतिकता और मानवता के सिद्धांतों पर आधारित है। डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर टिकी थी। वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर थे, जहाँ हर व्यक्ति को न्याय, बराबरी और सम्मान मिले। उन्होंने धर्म के नाम पर किसी भी तरह के पाखंड, शोषण और अन्याय को खारिज किया और हमेशा उस धर्म को महत्व दिया जो तर्कसंगत हो और नैतिकता के सार्वभौमिक सिद्धांतों का पालन करे। उनके अनुसार जाति व्यवस्था हिन्दू समाज की सबसे बड़ी बुराई है। यही व्यवस्था असमानताओं की जड़ है। डॉ. अम्बेडकर ने जीवन पर्यंत इसी बुराई को जड़ से मिटाने का प्रयास किया ताकि भारत में एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की स्थापना हो सके।

संवैधानिक प्रावधान :

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक ऐसी सामाजिक न्याय व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे जिसमें व्यक्ति की स्थिति उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसकी योग्यता और उपलब्धियों से तय हो। उनके दृष्टिकोण में कोई भी व्यक्ति जन्म के आधार पर ऊँचा या नीचा नहीं माना जाना चाहिए। इसी सोच के तहत उन्होंने सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष अवसर और संरक्षण की नीति का समर्थन किया। भारत का संविधान, जिसे डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में प्रारूपित किया गया, इसी न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज के विचार को मजबूत करता है। संविधान में ऐसे कई प्रावधान शामिल किए गए हैं जो सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के साथ-साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की गारंटी देते हैं।

संविधान सभा में अपने ऐतिहासिक भाषण में अम्बेडकर जी ने कहा था, "**मैंने अपना काम पूरा कर दिया है, काश कल सूरज फिर निकले। भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता तो मिल गई है, लेकिन सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता का सूरज अभी उगना बाकी है।**" इससे साफ झलकता है कि उनका सपना केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था, बल्कि वे चाहते थे कि समाज में सबको बराबरी का अधिकार मिले। संविधान-निर्माताओं ने यह भली-भांति समझ लिया था कि सच्चे लोकतंत्र की नींव केवल स्वतंत्रता और समानता पर नहीं टिक सकती इसके लिए न्याय भी उतना ही जरूरी है। बिना न्याय के, स्वतंत्रता और समानता के आदर्श खोखले साबित होंगे। इसी सोच के अनुरूप भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय देने का संकल्प लिया गया है। इन लक्ष्यों को साकार करने के लिए भारत ने लोकतांत्रिक और गणतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया और संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत नागरिकों को छह प्रकार की स्वतंत्रताएँ प्रदान की गईं ताकि हर नागरिक अपनी गरिमा के साथ समाज में जी सके। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय को एक आदर्श रूप में नहीं बल्कि व्यवहार में लाने के लिए अनेक प्रावधान किए गए हैं। संविधान के तीसरे भाग में मौलिक अधिकारों की व्याख्या की गई है और चौथे भाग में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना का प्रयास किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 14 में देश के सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता तथा समान सुरक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है, ताकि कोई भी व्यक्ति भेदभाव का शिकार न हो। अनुच्छेद 15 में यह स्पष्ट किया गया है कि किसी के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 16 के अंतर्गत राज्य के अधीन सभी पदों पर नियुक्ति में भी सभी नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होंगे। छुआछूत जैसी अमानवीय प्रथा को अनुच्छेद 17 के माध्यम से निषेध कर दिया गया है और अनुच्छेद 23 एवं 24 में बेगार और शोषणकारी प्रथाओं को रोकने की व्यवस्था की गई है। इन प्रावधानों के माध्यम से सामाजिक न्याय के मार्ग में आने वाली कई बाधाओं को समाप्त किया गया है। सिर्फ मौलिक अधिकार ही नहीं, बल्कि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में भी सामाजिक न्याय को सकारात्मक रूप से लागू करने के उपाय बताए गए हैं।

भारतीय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में विशेष रूप से अनुच्छेद 41 से 47 तक कई

व्यवस्थाएँ की गई हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य यह है कि देश के सभी नागरिकों को सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। इनमें अनुच्छेद 41 यह अधिकार प्रदान करता है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में नागरिकों को काम, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता मिल सके। अनुच्छेद 42 राज्य को यह दायित्व सौंपता है कि वह श्रमिकों के लिए उचित और सुरक्षित काम की परिस्थितियाँ बनाए रखने का प्रयास करेगा। अनुच्छेद 43 इस बात का प्रावधान करता है कि श्रमिकों को इतनी मेहनताना मिले जिससे वे सम्मानजनक जीवन जी सकें। इसके साथ ही अनुच्छेद 44 सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता लागू करने की बात करता है ताकि समाज में समानता और एकरूपता बनी रहे। अनुच्छेद 45 यह सुनिश्चित करता है कि बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराई जाए ताकि उनका भविष्य सुनहरा हो सके। अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों और अन्य कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा और आर्थिक विकास की व्यवस्था को बढ़ावा देता है ताकि वे समाज की मुख्यधारा से जुड़ सकें और अनुच्छेद 47 राज्य से यह अपेक्षा करता है कि वह जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक कदम उठाए और उनके पोषण स्तर में सुधार करे। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 325 में यह स्पष्ट किया गया है कि किसी भी व्यक्ति के साथ जाति, धर्म, नस्ल या लिंग के आधार पर चुनावों में भेदभाव नहीं किया जा सकता। वहीं अनुच्छेद 330 और 333 यह व्यवस्था करते हैं कि संसद और राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटों का आरक्षण दिया जाए ताकि उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो सके। अनुच्छेद 338 एक राष्ट्रीय आयोग के गठन का प्रावधान करता है जो अनुसूचित जातियों और जनजातियों को प्रदान की गई सुरक्षा और सुविधाओं की निगरानी करेगा ताकि उनके अधिकारों का उल्लंघन न हो। अंत में अनुच्छेद 341 यह व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा अनुसूचित जातियों की सूची को अंतिम रूप देंगे ताकि प्रत्येक राज्य में अनुसूचित जातियों के उपवर्गों की सरकारी पहचान सुनिश्चित की जा सके और वे संवैधानिक संरक्षण और लाभ प्राप्त कर सके।

वर्तमान परिपेक्ष्य में सामाजिक न्याय की संकल्पना :

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय की संकल्पना को समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि आज भी दलित समुदाय भारतीय समाज में कितनी विषमता और असमानता झेल रहा है। देश की कुल आबादी में दलितों की हिस्सेदारी लगभग 16.2 प्रतिशत है, परन्तु देश के संसाधनों पर उनका नियंत्रण 5 प्रतिशत से भी कम रह गया है। आधे से अधिक दलित आज भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने को विवश हैं और करीब 62 प्रतिशत दलित अशिक्षा की जंजीरों में जकड़े हुए हैं। उनकी घरेलू औसत आय भी राष्ट्रीय औसत से काफी कम है, जैसे कि 1998 में यह केवल 17,465 रुपये थी, जो उस समय के राष्ट्रीय औसत का केवल 68 प्रतिशत ही थी। आज भी अधिकतर दलित परिवार स्वच्छ पेयजल, बिजली और शौचालय जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में गिरावट स्पष्ट दिखाई देती है। इसके अलावा, दलित समुदाय को अब भी तरह-तरह के अत्याचारों और अपराधों का शिकार होना पड़ता है, जो न सिर्फ उनकी गरिमा को आहत करता है, बल्कि समाज के अन्य वर्गों में भी भय और

असुरक्षा का वातावरण उत्पन्न करता है। दुर्भाग्यवश, इन अपराधों का बड़ा हिस्सा या तो दर्ज ही नहीं होता या फिर लंबी न्यायिक प्रक्रिया और पुलिस की उपेक्षा के चलते अनसुलझा रह जाता है। 1992 से 2000 के बीच, कुल 334,459 संज्ञेय अपराधों के मामले दर्ज हुए, जिनमें अधिकांश को न्याय नहीं मिल सका। स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक बाद भी भारत जाति-आधारित भेदभाव और सामाजिक विषमता के जिस कैंसर से ग्रस्त है, वह सामाजिक न्याय की संकल्पना को लगातार चुनौती देता रहा है। आज भी दलित समुदाय को सबसे कमजोर, हाशिए पर खड़ा और उत्पीड़ित वर्ग माना जाता है, जो यह दर्शाता है कि हमारे समाज में सामाजिक न्याय की अवधारणा कितनी अधूरी है और इसे वास्तविकता में उतारने के लिए अब भी व्यापक सुधारों की आवश्यकता है।

बिहार में दलितों की स्थिति :

बिहार में सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में दलितों की वर्तमान स्थिति बेहद जटिल और चिंताजनक है। अनुसूचित जाति की आबादी 19.65 फीसदी, अनुसूचित जनजाति की आबादी 1.68 फीसदी है , इसमें अनुसूचित जातियों का एक बड़ा हिस्सा महादलित समुदाय से संबंधित है, जिसे सबसे अधिक वंचित और कमजोर माना जाता है। 2022 की बिहार जाति आधारित गणना रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है कि दलित समुदाय आज भी आर्थिक और सामाजिक रूप से मुख्यधारा से काफी पीछे है।

दलितों की आर्थिक स्थिति देखें तो करीब 43 प्रतिशत दलित परिवारों की मासिक आय 6,000 रुपये से भी कम है, जबकि राज्य में कुल परिवारों में यह आंकड़ा करीब 34 प्रतिशत के आसपास है। सरकारी नौकरियों में दलितों की हिस्सेदारी बेहद कम है, कुल सरकारी पदों में उनकी भागीदारी महज 1.13 प्रतिशत के करीब है। इसके अलावा निजी संपत्तियों और साधनों पर भी उनकी पकड़ कमजोर है 95 प्रतिशत से अधिक दलित परिवारों के पास निजी वाहन तक नहीं हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में भी स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले दलित बच्चों में से बड़ी संख्या बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती है। एक हालिया अध्ययन में यह सामने आया कि बिहार के कुछ जिलों में लगभग 26 प्रतिशत दलित बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं और मुसहार जैसी अत्यंत पिछड़ी जातियों में यह अनुपात 37 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। जो बच्चे स्कूल में टिके भी रहते हैं, उन्हें जातीय भेदभाव झेलना पड़ता है। कई जगह बच्चों से शौचालय या स्कूल परिसर को साफ करवाना या कक्षा में पीछे बैठाना जैसी घटनाएं आज भी सामने आती रहती हैं। लड़कियों के साथ यौन उत्पीड़न की घटनाएं भी चिंता का विषय हैं। स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच भी सीमित है, गर्भवती दलित महिलाओं को सरकारी सुविधाओं तक पहुंचने में लंबी दूरी तय करनी पड़ती है और जागरूकता की कमी के कारण भी योजनाओं का पूरा लाभ नहीं मिल पाता।

सामाजिक उत्पीड़न और हिंसा की घटनाओं से भी बिहार के दलित समुदाय स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है। एनसीआरबी के आंकड़े दिखाते हैं कि दलितों पर अत्याचार के मामलों में हाल के वर्षों में बढ़ोतरी हुई है। हत्या, बलात्कार और घरों को आग लगाने जैसी घटनाएं आम हो गई हैं। न्यायालयों में दलित अत्याचार निवारण कानून के तहत दर्ज मामलों में दोषसिद्धि की दर भी बहुत कम है और हजारों मामले आज भी लंबित हैं।

राजनीतिक दृष्टि से देखें तो बिहार में दलित मतदाता बड़ी संख्या में मौजूद हैं, लेकिन उनका समर्थन कई दलों में बंटा हुआ है। महादलितों को विशेष योजनाओं के जरिए लक्षित तो किया गया, लेकिन ज़मीनी लाभ सीमित ही रह गया। आज भी दलित समुदाय को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सुरक्षा के मोर्चे पर ठोस कदमों की दरकार है। सामाजिक न्याय की अवधारणा तब सार्थक होगी, जब हर स्तर पर दलितों को बराबरी का समान अवसर प्राप्त होगा। वर्तमान स्थिति संकेत देती है कि सामाजिक भेदभाव खत्म करने के लिए कागज़ी योजनाओं के बजाय मजबूत क्रियान्वयन तंत्र की जरूरत है ताकि वंचित वर्गों को भी विकास की मुख्यधारा में वास्तविक रूप से जोड़ा जा सके।

निष्कर्ष :

डॉ. अम्बेडकर ने जिस सामाजिक न्याय की परिकल्पना की थी, उसका मूल उद्देश्य भारतीय समाज में समानता, मानवीय गरिमा और सभी वर्गों को बराबरी का अधिकार दिलाना था। भारतीय संविधान में ऐसे कई प्रावधान शामिल हैं जो विशेष रूप से कमजोर और वंचित वर्गों, विशेषकर दलितों के अधिकारों की रक्षा और उनके विकास के लिए बनाए गए हैं। फिर भी वर्तमान में देखा जाए तो दलित समुदाय की स्थिति में अपेक्षित सुधार अब तक पूरी तरह नहीं हो सका है। संविधान में भेदभाव मिटाने के लिए कानूनी प्रावधान तो हैं, परंतु सामाजिक स्तर पर जातिगत भेदभाव की जड़ें अब भी गहरी हैं। डॉ. अम्बेडकर ने जातिगत शोषण को समाप्त करने के लिए संवैधानिक उपायों को अपनाया और एक समतामूलक समाज की स्थापना का स्वप्न देखा था। लेकिन यह सपना आज भी अधूरा प्रतीत होता है क्योंकि भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना और सामाजिक असमानता अब भी समाज में मौजूद हैं। इसका एक उदाहरण यह भी है कि सम्मानपूर्वक जीवन जीने और जातिगत भेदभाव से मुक्ति पाने के लिए कई दलितों ने बौद्ध धर्म को अपनाने का रास्ता चुना। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब तक जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था जैसी कुरीतियाँ समाज से समाप्त नहीं होतीं, तब तक सामाजिक न्याय की अवधारणा पूरी तरह से लागू नहीं हो सकती है इस दिशा में सरकार, समाज और विभिन्न संगठनों को मिलकर निरंतर प्रयास करने होंगे। जातिवाद को खत्म करने के लिए शिक्षा व्यवस्था में सुधार जरूरी है ताकि बचपन से ही बच्चों में समानता और सामाजिक सद्भाव के मूल्य विकसित हो सकें। साथ ही समाज में जागरूकता अभियान चलाकर लोगों को भेदभाव और जातिवाद के दुष्प्रभावों के बारे में बताया जाना चाहिए। इसके अलावा संस्थाओं, संगठनों और एनजीओ इत्यादि के माध्यम से समाज में जातिवाद के प्रति लोगों को जागरूक किया जाना चाहिए। इसके साथ ही केंद्र और राज्य सरकारों को भी समय-समय पर सामाजिक सुधार के लिए आवश्यक कदम उठाते रहना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉक्टर रामगोपाल सिंह डॉक्टर अंबेडकर के सामाजिक विचार मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 1991
2. डॉक्टर अम्बेडकर और समाज व्यवस्था कृष्ण तत्व पालीवाल किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली 1996
3. शशि श्याम सिंह बाबा साहेब अम्बेडकर वांग्मय खण्ड-2, नई दिल्ली, 1998.

4. सिंह ,रामगोपाल डॉ अम्बेडकर सामाजिक न्याय एवं परिवर्तन नेशनल पब्लिशिंग हाउस , दिल्ली,2006
5. डॉक्टर रामगोपाल सिंह सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर 2010
6. डॉ बाबासाहेब अम्बेडकर जीवन चरित्र धनंजय कीर पापुलर प्रकाशन नई दिल्ली 1996
7. भारती, राम विलास-बीसवीं सदी में दलित समाज, अनामिका पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010.
8. डोडिया जाटव सामाजिक न्याय का सिद्धांत समता साहित्य सदन जयपुर 1993
9. डॉक्टर डीआर जाटव डॉक्टर अम्बेडकर व्यक्तित्व और कृतित्व क्षमता प्रकाशन जयपुर 1988
10. आरजी सिंह भारतीय दलितों की समस्या एवं उनका समाधान मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल 1986
11. गुप्ता, विश्वप्रकाश-भीमराव अम्बेडकर व्यक्ति और विचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008.